अंक
83-84

कथन

साहित्य और संस्कृति की पत्रिका



बढ़ती अमानुषिकता से जूझती दुनिया

अमानुषीकरण की समस्या का समाधान

प्रसिद्ध जन-इतिहासकार लाल बहादुर वर्मा से संज्ञा उपाध्याय की बातचीत

संज्ञा उपाध्याय : आज देश में देखें या दुनिया में, सर्वत्र अमानुषिकता बढ़ती दिखायी देती है, जिसे पशुता और बर्बरता भी कहा जाता है। छोटी-छोटी बच्चियों तक के साथ की जाने वाली दरिंदगी से लेकर बड़ी-बड़ी आबादियों तक को मिटा देने की बर्बरता की घटनाएँ बढ़ती ही जा रही हैं। रोजमर्रा की हत्या और आत्महत्या वाली हिंसा से लेकर बड़ी-बड़ी आतंकवादी घटनाओं में और दूसरे देशों के विरुद्ध युद्ध में की जाने वाली हिंसा के साथ-साथ राज्यसत्ताओं द्वारा अपनी जनताओं के विरुद्ध बरती जाने वाली दमनकारी हिंसा भी सर्वत्र बढ़ती नजर आती है। आप एक लेखक और इतिहासकार की दृष्टि से अमानुषीकरण की समस्या को कैसे देखते हैं?

लाल बहादुर वर्मा : सबसे पहले तो आपको इसके लिए साधुवाद कि आपने 'मानवता' की जगह 'मानुषिकता' का प्रश्न उठाया, क्योंकि 'मानवता' एक अमूर्त चीज है, जिस पर धर्म, दर्शन, नैतिकता आदि की बहुत-सी अमूर्त बातें की जा सकती हैं; जबकि मानुषिकता एक ठोस चीज है, जिसका संबंध अमानुषीकरण की प्रक्रिया से है। अमानुषीकरण आज की दुनिया की एक भयंकर समस्या है, जो अनेक कारणों से उत्तरोत्तर अधिक विकराल होती जा रही है। लेकिन मानुषीकरण एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया है, जिसे इसकी विराटता और सूक्ष्मता दोनों में समझना जरूरी है और इसके लिए हमें 'मैक्रो' और 'माइक्रो' दोनों दृष्टियों से इस पर विचार करना चाहिए। अन्यथा हम अमानुषिकता को कोई तात्कालिक समस्या अथवा किसी देश की किसी खास तरह की शासन प्रणाली से जुड़ी समस्या समझ लेंगे और सोचेंगे कि इस शासन प्रणाली की जगह कोई दूसरी शासन प्रणाली आ जायेगी, तो यह समस्या हल हो जायेगी।

संज्ञा उपाध्याय : जी, जैसे कुछ लोग मानते हैं कि समाज में अपराधों के बढ़ने का कारण लोगों में मनुष्यता का न रह जाना या कम हो जाना है और अपराधियों को सुधारना संभव नहीं है, इसलिए उन्हें फाँसी जैसे कठोरतम दंड दिये जाने चाहिए। कुछ लोग यह

भी कहते हैं कि इसके लिए देश में जनतंत्र की जगह तानाशाही होनी चाहिए।

लाल बहादुर वर्मा : यह समस्या को बहुत ही गलत ढंग से समझना है और बहुत ही बुरे उपायों से उसका समाधान सुझाना है। यह सही है कि अमानुषीकरण की समस्या जितने क्रूर और भयावह रूप में आज उजागर हुई है, उतनी शायद पहले कभी नहीं हुई, लेकिन न तो इसका संबंध आज की व्यवस्था से है और न इसका समाधान ही आज की व्यवस्था में है। इसको समझने के लिए मनुष्य को समझना होगा। मनुष्य असीम संभावनाओं से युक्त एक विशिष्ट प्राणी है। वह न तो पशु है और न ही ईश्वर। उसकी विशिष्टता यह है कि वह अपनी समस्याएँ स्वयं ही पैदा करता है और उसमें ही क्षमता है उनका समाधान खोजने की। लेकिन एक तरफ अगर उसकी संभावनाएँ अनंत हैं, तो दूसरी तरफ उसकी सीमाएँ भी अनंत हैं। अमानुषिकता की समस्या न तो प्रकृति ने पैदा की है, न किसी ईश्वर ने। यह समस्या मनुष्य ने ही पैदा की है। वही सबसे ज्यादा इसके परिणामों को भोगता है और वही इसके समाधान के लिए चिंतित रहता है। और यह बात कुछ खास तरह के मनुष्यों पर नहीं, बल्कि सभी और सभी तरह के मनुष्यों पर लागू होती है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि अमानुषीकरण एक वास्तविक मानवीय समस्या है, और मनुष्य क्योंकि सामाजिक प्राणी है, इसलिए यह एक सामाजिक समस्या है, जिसे हल किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। लेकिन अमानुषिक होकर मनुष्य जो अपराध करता है, उसके कारण अमानुषिकता को ही एक अपराध मान लेना और कठोर दंड की व्यवस्था से इसका समाधान संभव मान लेना उचित नहीं है। और जनतंत्र की जगह तानाशाही की माँग करके इसका समाधान संभव बताना या तो मूर्खता है, या फिर एक प्रकार की धूर्तता।

संज्ञा उपाध्याय : समाधान की बात हम बाद में करेंगे, पहले समस्या को अच्छी तरह समझ लिया जाये।

लाल बहादुर वर्मा : मुझे गालिब का एक शेर याद आता है--बस कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना, आदमी को भी मयस्सर नहीं इंसाँ होना। गालिब आदमी और इंसान में फर्क करते हैं। वे चाहते हैं कि आदमी इंसान बने, मगर पाते हैं कि यह आसान नहीं है। इस प्रकार देखें, तो आदमी वह है, जो अभी मनुष्य नहीं बन पाया है, अमानुषिक है, और उसे मनुष्य बनना है। यह मुश्किल है, लेकिन मनुष्य के जीवन का लक्ष्य तो मनुष्य बनना ही है। यही स्वाभाविक है, यही उचित है, यही नैतिक है और यही आवश्यक है। एक और तरह से अमानुषीकरण की समस्या को हम इस तरह से समझ सकते हैं कि अब तक की पूरी ऐतिहासिक प्रक्रिया में मनुष्य जितना मनुष्य बन पाया है, उसकी उतनी मनुष्यता एक सामान्य स्थिति है। लेकिन इतिहास में ऐसे दौर आते रहे हैं, और आज भी शायद एक ऐसा ही दौर है, जब एक व्यक्ति, जाति या समुदाय पर अमानुषिकता हावी हो जाती है और वह उतना मनुष्य भी नहीं रहता, जितना अब तक की ऐतिहासिक प्रक्रिया में बन चुका है। इस तरह से देखें, तो मानुषिकता एक सामान्य स्थिति है, जबकि अमानुषिकता एक असामान्य स्थिति। अतः यह सोचना कि दुनिया भर के तमाम लोग अमानुषिक हो गये हैं, या किसी दिन सारी मनुष्य जाति अमानुषिक हो जायेगी, गलत है। इतिहास के किसी भी दौर में ऐसा नहीं हुआ है कि संपूर्ण मनुष्य जाति, या किसी एक देश या एक समाज के भी सभी लोग अमानुषिक हो गये हों। उदाहरण के लिए, हिटलर अमानुषिक हो गया था, उसने जो व्यवस्था बनायी थी, वह अमानुषिक थी, लेकिन पूरा जर्मन समाज अमानुषिक नहीं हो गया था। स्वयं हिटलर भी पूरी तरह अमानुषिक नहीं हुआ था। घृणा

और हिंसा पर आधारित नात्सीवाद या फासीवाद अमानुषिक है, लेकिन वह एक असामान्य स्थिति है। सामान्य स्थिति तो शांति, सद्भाव, प्रेम और अहिंसा पर आधारित व्यवस्था ही है। अतः फासीवाद जैसी असामान्य स्थिति में भी हमें यह नहीं समझना चाहिए कि पूरा समाज ही अमानुषिक हो गया है या समूची दुनिया ही अमानुषिक हो गयी है।

संज्ञा उपाध्याय : इस दृष्टि से देखें, तो क्या हम यह कह सकते हैं कि मनुष्यता एक सामान्य स्थिति है और बर्बरता एक असामान्य स्थिति? लेकिन रोजा लक्जेमबर्ग को याद करें, जिन्होंने कहा था कि पूँजीवाद के बाद समाजवाद ही आये, यह जरूरी नहीं है; उसकी जगह बर्बरता भी आ सकती है। आज की वैश्विक परिस्थिति को, जो एक बर्बरता की-सी स्थिति है, अमानुषिकता के संदर्भ में कैसे समझा जाये?

लाल बहादुर वर्मा : देखिए, जब हमें किसी को बुरा कहना होता है, तो हम उसे जानवर कह देते हैं, या जानवर का नाम लेकर कुत्ता या गधा। लेकिन जहाँ तक बर्बरता का सवाल है, मनुष्य तो बर्बर होता है, कोई जानवर बर्बर नहीं होता। मांसाहारी पशु को, जैसे शेर को, जब भूख लगती है, तो वह दूसरे पशु को मारकर खाता है। इसमें कोई बर्बरता नहीं है, क्योंकि यह तो उसकी प्रकृति है। जैसे हम खाना खाते हैं, वैसे वह दूसरे जानवर को खाता है। हाँ, मनुष्य बर्बर होते हैं, लेकिन पैदाइशी बर्बर या हमेशा बर्बर नहीं होते। बर्बरता उनकी प्रकृति नहीं, एक असामान्यता है, जो विशेष परिस्थितियों में विशेष कारणों से उत्पन्न होती है। मसलन, सांप्रदायिक दंगों में कई ऐसे लोग भी, जो सामान्य स्थितियों में बड़े सभ्य और शालीन होते हैं, जिस पड़ोसी से प्रेम करते हैं, उसी को मार डालते हैं। उस समय वे बर्बर होते हैं, लेकिन सामान्य होने पर फिर से सामान्य हो जाते हैं।

संज्ञा उपाध्याय : मतलब, उनकी बर्बरता के लिए वे नहीं, परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं?

लाल बहादुर वर्मा : इस बात को हम इस तरह समझ सकते हैं कि एक आदमी बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर एक बार एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच गया, तो इसका मतलब यह नहीं कि अगली बार वह बिना किसी कठिनाई के उस चोटी पर चढ़ जायेगा। अगली बार भी, और हर बार एवरेस्ट पर चढ़ते समय उसे वैसी ही कठिनाइयाँ आयेंगी और उसे उनका सामना करना पड़ेगा, क्योंकि कई कठिनाइयाँ ऐसी हो सकती हैं, जो पहली बार या हर पिछली बार चढ़ते समय न आयी हों और उनका सामना उस आदमी को नये ढंग से करना पड़े। मनुष्य के विकास में भी ऐसी कठिनाइयाँ आती हैं, और बार-बार आती हैं, और हर बार मनुष्य को उनका सामना नये ढंग से करना पड़ता है। मनुष्य के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया में उसका रास्ता समतल नहीं होता कि वह सहजता से उस पर चलता चला जाये। उस रास्ते में उतार-चढ़ाव हो सकते हैं, बाधाएँ हो सकती हैं, नयी कठिनाइयाँ आ सकती हैं, नयी परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। मनुष्य का इतिहास उसकी मनुष्यता के साथ-साथ उसकी अमानुषिकताओं या बर्बरताओं का भी इतिहास है।

संज्ञा उपाध्याय : लेकिन इतिहास में जो बर्बरताएँ हम देखते हैं, उनकी तुलना में आज की बर्बरताएँ बहुत बड़ी और कहीं ज्यादा भयानक हैं। एक तो वे स्थानीय स्तर की न रहकर भूमंडलीय स्तर की हो गयी हैं और...

लाल बहादुर वर्मा : देखिए, एक तो आज उसकी अभिव्यक्तियाँ असाधारण हैं और दूसरे, आप ठीक कह रही हैं, वे स्थानीय नहीं, भूमंडलीय स्तर की हैं। अमानुषिकता आज एक यूनिवर्सल

समस्या बन गयी है। वह इस-उस देश की नहीं, बल्कि सभी देशों की, बल्कि पूरी दुनिया की समस्या है। वह हमें ज्यादा भयानक इसलिए भी लगती है कि उसका समाधान पूरी दुनिया को मिल-जुलकर और एकजुट होकर करना पड़ेगा, जबकि ऐसी एकजुटता होती कहीं नजर नहीं आती। अब जैसे भारत में जो मनुवाद की समस्या है, वह पहले हमें स्थानीय स्तर की लगती थी। उससे जात-पाँत, ऊँच-नीच, छुआछूत जैसी चीजें जुड़ी थीं, जो नितांत भारतीय लगती थीं; लेकिन आज हम देखते हैं कि मनुवाद किसी न किसी रूप में हर देश में मौजूद है। हर देश में किसी न किसी तरह की ऊँच-नीच है, सामाजिक-सांस्कृतिक भेदभाव है, मनुवादी पितृसत्तावाद तो हर जगह मौजूद है ही, किसी न किसी तरह का वर्णवाद और जातिवाद भी मौजूद है, जैसे नस्लवाद या रंगभेदवाद के रूप में--गरीबों और कमजोरों को, स्त्रियों और अल्पसंख्यकों को यहाँ के शूद्रों जैसा मानने के रूप में; उनके साथ किये जाने वाले अमानुषिक अत्याचारों के रूप में। या फिर सांप्रदायिकता की समस्या को लें। वह भी पूरी दुनिया में किसी न किसी रूप में मौजूद है और वह सर्वत्र अमानुषिकता को जन्म देती है। इस तरह देखें, तो हमें अपने यहाँ के मनुवाद की समस्या को पूरी दुनिया में फैले विभिन्न रूपों वाले मनुवाद की समस्या के रूप में देखना होगा और उसका समाधान केवल स्थानीय स्तर पर संभव न देख भूमंडलीय स्तर पर करना होगा।

संज्ञा उपाध्याय : यानी आप यह कह रहे हैं कि आज की अमानुषिकता का एक विशेष चरित्र है, जिसे समझना होगा। तो आप इस समस्या को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और नैतिक आयामों में किस प्रकार देखते हैं?

लाल बहादुर वर्मा : देखिए, अमानुषिकता के कई रूप हैं। जैसे आर्थिक दृष्टि से देखें, तो शोषण अमानुषिक है; मुनाफाखोरी अमानुषिक है, लोगों को गरीब, अशिक्षित और बेरोजगार बनाये रखना अमानुषिक है। सामाजिक दृष्टि से देखें, तो समाज में श्रेणीबद्धता अमानुषिक है; जाति और धर्म के आधार पर की जाने वाली घृणा और हिंसा अमानुषिक है; ऊँच-नीच और छुआछूत अमानुषिक है। राजनीतिक दृष्टि से देखें, तो जनतंत्र में जन को नागरिक स्वतंत्रताओं और जनतांत्रिक अधिकारों से वंचित करना अमानुषिक है; निर्धनों का धन लूटकर धनिकों के खजाने भरना अमानुषिक है; चुनाव-प्रक्रिया में धोखाधड़ी और शासन-प्रशासन में पक्षपात अमानुषिक है। सांस्कृतिक दृष्टि से देखें, तो धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिक हिंसा, स्त्रियों और दलितों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार और बच्चों तथा बूढ़ों के प्रति दुर्व्यवहार अमानुषिकता है। नैतिक दृष्टि से देखें, तो मनुष्य और मनुष्यता के विरुद्ध, प्रकृति और पर्यावरण के विरुद्ध, मनुष्यों की आगामी पीढ़ियों के विरुद्ध कुछ भी करना अमानुषिक है; क्योंकि नैतिकता का संबंध मनुष्यता के वर्तमान से ही नहीं, बल्कि मनुष्यता के भविष्य से भी है।

संज्ञा उपाध्याय : आपने अमानुषिकता के जो विभिन्न आयाम और विविध रूप अभी बताये हैं, उनमें से किस पर ध्यान देना आप मनुष्य के मानुषीकरण के लिए प्राथमिक रूप से आवश्यक मानते हैं।

लाल बहादुर वर्मा : नैतिकता पर। जब आपने अमानुषिकता की समस्या के नैतिक आयाम की बात की, तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मेरे विचार से मानुषिकता-अमानुषिकता के संदर्भ में नैतिकता-अनैतिकता का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण है। नैतिकता क्या है, इसके बहुत दार्शनिक विश्लेषण में न जाकर अत्यंत संक्षेप में कहें, तो मनुष्य के हित में जो भी करणीय है, वह नैतिक है; और जो भी अकरणीय है, वह अनैतिक है। इस तरह देखें, तो नैतिकता किन्हीं धार्मिक या

अन्य प्रकार के ग्रंथों में लिखित नियमों का पालन करने में नहीं, बल्कि नैतिक आचरण करने में होती है और नैतिक आचरण के नियम मनुष्य ने अपने अनुभवों से विकसित किये हैं। ये नियम किसी ईश्वर ने नहीं बनाये हैं, बल्कि स्वयं मनुष्य ने बनाये हैं और उन्हें अपने आचरण में उतारकर उसने अपनी मनुष्यता का विकास किया है। ग्रंथों या पोथियों में लिखित नैतिक नियम शाश्वत और अपरिवर्तनीय माने जाते हैं, जैसा कि कट्टरतावादी लोग मानते हैं। किंतु नैतिकता कोई जड़ या स्थिर चीज नहीं, बल्कि बड़ी जीवंत और गतिशील चीज है। इसीलिए वह परिवर्तनशील होती है। प्रत्येक युग की अपनी नैतिकता होती है, जिसे हम युगीन नैतिकता कहते हैं। युग बदलता है, तो नैतिकता भी बदलती है। मसलन, पितृसत्ता पुराने युग की चीज है। उससे निकलने वाले नैतिक नियम पुरानी समाज-व्यवस्था के नियम हैं। उन नैतिक नियमों को वर्तमान युग में लागू करना नैतिक नहीं, अनैतिक है। 'मनुस्मृति' में बतायी गयी नैतिकता आज की नैतिकता नहीं हो सकती। मसलन, वर्णों और जातियों के आधार पर समाज को बाँटकर ऊँच-नीच और छुआछूत की व्यवस्था को उचित बताना; या स्त्री-पुरुष दोनों को समान मनुष्य न मानकर पुरुष को ऊँचा और स्त्री को नीचा दरजा देना; हो सकता है किसी पुराने जमाने में नैतिक रहा हो, पर आज तो सर्वथा अनैतिक ही कहा जायेगा। पुरानी नैतिकता को आज के समाज पर थोपकर ऊँच-नीच की व्यवस्था को बनाये रखने में जो अनैतिकता है, वह मनुष्य को अमानुषिक बनाती है। उस अमानुषिकता के विभिन्न रूप हम आज भारतीय समाज में देख सकते हैं। उदाहरण के लिए, जाति और धर्म के बंधन तोड़कर प्रेमविवाह करने वालों को खाप पंचायतों के द्वारा मृत्युदंड दिया जाना या लव-जिहाद के नाम पर मार डालना नैतिकता के नाम पर बरती जाने वाली घोर अमानुषिकता है।

संज्ञा उपाध्याय : इस अमानुषिकता को रोकने का उपाय...?

लाल बहादुर वर्मा : उपाय तो एक ही है : मनुष्यों में मानुषिकता जगाना। लेकिन यह काम किसी कानून या कठोर दंड-विधान के जरिये नहीं किया जा सकता। हमारे यहाँ दिक्कत यह है कि जो लोग ऐसी हिंसा के शिकार होते हैं, वे भी स्वयं पर हुए अन्याय का प्रतिकार करने के लिए कठोर से कठोर दंड की माँग करते हैं। मसलन, बलात्कारी को फाँसी देने की माँग। लेकिन ऐसे उपायों से अमानुषिक लोगों को मानुषिक नहीं बनाया जा सकता। उलटे, इनसे अमानुषिकता और बढ़ती है। अमानुषिक हो चुके मनुष्यों को फिर से मनुष्य बनाने के लिए जरूरी है समाज को एक मानवीय समाज बनाना। एक ऐसा समाज बनाना, जिसमें वे लोग, जो अमानुषिक नहीं हैं--उदाहरण के लिए वे लोग, जो किसी बच्ची को बलात्कार का शिकार बनाने के बाद उसे मार डालने जैसे अमानुषिक कृत्य में शामिल नहीं हैं; जिनका उस बच्ची या बलात्कारी हत्यारे से कोई संबंध नहीं है; जो उस समय वहाँ मौजूद भी नहीं थे--वे ऐसे दुष्कृत्य का समाचार पढ़-सुनकर एक-दूसरे से यह कहने के बजाय कि उस बलात्कारी हत्यारे को कठोर से कठोर दंड मिलना चाहिए, यह सोचें कि हमारे समाज में ऐसी अमानुषिकता हो रही है, तो यह हमारे लिए कितनी शर्म की बात है। अगर ऐसा कोई समाचार पढ़-सुनकर हम स्वयं शर्मिंदा होंगे, तो सिर्फ यह कहकर नहीं रह जायेंगे कि अपराधी को कठोरतम दंड मिलना चाहिए, बल्कि ऐसी अमानुषिकता की रोकथाम की जिम्मेदारी केवल पुलिस, प्रशासन और न्याय व्यवस्था पर न डालकर स्वयं को भी जिम्मेदार मानेंगे और कम से कम अपने परिवार और पड़ोस में ऐसा वातावरण बनाने की कोशिश करेंगे, जिसमें ऐसी अमानुषिकता पैदा न हो। मतलब यह कि

अमानुषीकरण के प्रश्न को हम कानून और व्यवस्था का प्रश्न नहीं, बल्कि अपनी सभ्यता, संस्कृति और नैतिकता का प्रश्न बनाकर हल करने की सोचें।

संज्ञा उपाध्याय : स्त्रियों की दुर्दशा और उनके उत्पीड़न के संदर्भ में आप अमानुषिकता की समस्या को कैसे देखते हैं?

लाल बहादुर वर्मा : स्त्री के संदर्भ में अमानुषीकरण के प्रश्न को मैं एक शाश्वत प्रश्न मानता हूँ। स्त्री और पुरुष में जो प्राकृतिक या शारीरिक भेद है, वह एक वस्तुस्थिति है। मातृसत्तात्मक व्यवस्था में यह भेद किस प्रकार का रहा होगा, हम केवल इतिहास से जानते हैं। लेकिन जब से पितृसत्ता अस्तित्व में आयी है, स्त्री अमानुषीकरण की शिकार होती आयी है और आज तक हो रही है, क्योंकि पितृसत्ता आज भी कायम है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री पर पुरुष का ही आधिपत्य नहीं होता है, समाज का भी आधिपत्य होता है। इसलिए स्त्री दोहरे उत्पीड़न की शिकार होती है। एक तरफ पुरुष द्वारा किये जाने वाले उत्पीड़न की शिकार, तो दूसरी तरफ समाज द्वारा किये जाने वाले उत्पीड़न की शिकार। उदाहरण के लिए, स्त्री किसी गरीब, दलित या अल्पसंख्यक की पत्नी होने के नाते उस सामाजिक उत्पीड़न की शिकार तो होती ही है, जिसका शिकार उसका पति होता है; वह घर में उस गरीब, दलित या अल्पसंख्यक पुरुष के उत्पीड़न की शिकार भी होती है। या जैसे लिंचिंग का उदाहरण लें, जब किसी पुरुष को लिंच किया जाता है, यानी भीड़ द्वारा घेरकर मार डाला जाता है, तो लिंचिंग में मारा गया पुरुष ही नहीं मारा जाता, बल्कि उसकी पत्नी, माँ, बहन और बेटी को भी मारा जाता है, चाहे वे वहाँ मौजूद हों या न हों, क्योंकि उस पुरुष के मर जाने से उनका जीवन भी प्रभावित होता है।

संज्ञा उपाध्याय : आपने कहा कि स्त्री के संदर्भ में अमानुषीकरण को आप एक शाश्वत प्रश्न मानते हैं। क्या इसका अर्थ यह है कि स्त्री अमानुषीकरण की शिकार सदा से होती आयी है और सदा होती रहेगी?

लाल बहादुर वर्मा : नहीं, मेरा यह आशय नहीं है। स्त्री के संदर्भ में तो अमानुषीकरण के प्रश्न पर सबसे बड़ी प्राथमिकता के साथ विचार किया जाना चाहिए, क्योंकि हमने आधुनिक उपनिवेशवाद के विरुद्ध तो लड़ाई लड़ी और जीती, लेकिन स्त्री को तो धरती को उपनिवेश बनाने के पहले ही उपनिवेश बनाया गया। मैंने अन्यत्र कहा है कि स्त्री संसार का पहला उपनिवेश थी और स्त्री ही संसार का अंतिम उपनिवेश है। देश को आजादी मिली, कुछ पुरुषों को भी आजादी मिली, किंतु स्त्री चाहे किसी भी वर्ग, वर्ण या जाति की हो; ग्रामीण हो या शहरी हो; शिक्षित हो या अशिक्षित हो; घरेलू हो या कामकाजी हो; आज भी आजाद नहीं है। वह आज भी अमानुषिकता की शिकार होती है, रोज-रोज होती है और घर-बाहर सब जगह होती है। परिवार में भी और अपने कार्यस्थल पर भी। और उन लोगों के द्वारा भी, जो उसके अपने हैं और प्रबुद्ध हैं। वह अपने प्रबुद्ध बाप, प्रबुद्ध भाई और अपने प्रबुद्ध पति की अमानुषिकता की भी शिकार है।

संज्ञा उपाध्याय : आप स्त्रीवाद से कहाँ तक सहमत हैं?

लाल बहादुर वर्मा : मैं उस स्त्रीवाद से सहमत नहीं हूँ, जिसमें यह माना जाता है कि पुरुष के विरुद्ध लड़कर स्त्री अमानुषिकता की शिकार होने से बच जायेगी। यह सही है कि अपने उपनिवेशीकरण के विरुद्ध लड़ने के लिए उसे पितृसत्ता या पुरुष वर्चस्व के विरुद्ध संघर्ष करना होगा, लेकिन उसे समाज की उस व्यवस्था के विरुद्ध भी संघर्ष करना होगा, जो पितृसत्ता जैसी पुरानी और अमानुषिक व्यवस्था को इसलिए बनाये रखती है कि उसके सहारे स्वयं को

बनाये रखे। समाज की उस व्यवस्था के विरुद्ध स्त्री अकेली नहीं लड़ सकती। उसे पुरुषों के साथ मिलकर लड़ना होगा और मेरा विश्वास है कि आज के बहुत-से नहीं, तो कम से कम कुछ पुरुषों में यह चेतना है कि उन्हें अमानुषीकरण के अन्य रूपों के साथ-साथ पितृसत्ता वाले रूप के विरुद्ध भी संघर्ष करना है और यह संघर्ष स्त्रियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर करना है।

संज्ञा उपाध्याय : आप इतिहासकार हैं, 'इतिहास-बोध' पत्रिका के संपादक हैं, लेकिन साहित्यकार भी हैं और लंबे समय तक 'भंगिमा' नामक साहित्यिक पत्रिका निकालते रहे हैं। तो यह बतायें कि अमानुषीकरण के विरुद्ध आज के साहित्य में क्या कोई रचनात्मक हस्तक्षेप हो रहा है? अगर हो रहा है, तो वह कैसा है और यदि नहीं हो रहा है, तो क्यों नहीं हो रहा है?

लाल बहादुर वर्मा : इस प्रश्न का मुझे बहुत नकारात्मक उत्तर देना पड़ेगा और कुछ कटु बातें कहनी पड़ेंगी। ऐसा नहीं है कि मैं साहित्य की दुनिया से बाहर खड़ा होकर साहित्यकारों पर इलजाम लगा रहा हूँ। मैं स्वयं को भी उस दुनिया में शामिल कर रहा हूँ। लेकिन मुझे जो दिखायी पड़ता है, जो मैं महसूस करता हूँ, उसे सच-सच कह देना जरूरी समझता हूँ। साहित्यकार समाज के बेहतर दृष्टिकोण वाले संवेदनशील लोग होते हैं, या माने जाते हैं, लेकिन अमानुषीकरण की समस्या के संदर्भ में साहित्यकारों का, विशेष रूप से हिंदी साहित्यकारों का, समुदाय मुझे सबसे कर्तव्यच्युत समुदाय दिखायी पड़ता है। वह न तो इस दिशा में संवेदित है, न पीड़ित है, न सक्रिय है। होना तो यह चाहिए कि साहित्यकार समाज में हर तरफ और दिन पर दिन बढ़ती अमानुषिकता से गहन रूप में संवेदित हों और उठकर उसका विरोध करें। मगर मैं देखता हूँ कि लिंचिंग जैसी घटनाएँ हमारी आँखों के सामने हो रही हैं और किसी अख्लाक के मारे जाने पर किसी लेखक की नींद खराब नहीं होती। मैंने भी अख्लाक के मारे जाने पर लिखने से पहले पल भर को सोचा था कि उसे मैंने तो नहीं मारा, लेकिन फिर मुझे लगा कि आज के हालात का सबसे बुरा पक्ष यही है कि हम अमानुषिकता को देखते हैं और चुप रहते हैं, या फेसबुक पर कुछ लिखकर अपनी संवेदनशीलता दिखाकर अपना कर्तव्य पूरा हुआ समझ लेते हैं। बेहयाई राजनीति में तो चलती ही है, पर साहित्यकार भी बेहया हो जाये, उसे किसी बात पर भी शर्म न आये, वह मजे से जीता रहे, पुरस्कार आदि पाने के लिए चापलूसियाँ करता रहे या किसी झंझट में पड़ जाने के डर से अमानुषिकता का विरोध करने के बजाय उसकी तरफ से आँखें मूँद ले, तो लानत है उस पर! हालाँकि सब साहित्यकार ऐसे नहीं हैं, फिर भी ऐसों की संख्या कम भी नहीं है।

संज्ञा उपाध्याय : इसका एक दूसरा पक्ष भी है। साहित्यकार अपने-आप में कोई बड़ी संगठित सामाजिक शक्ति नहीं है कि लिंचिंग जैसी घटनाओं पर कोई बड़ा विरोध प्रदर्शन कर सकें या आंदोलन चला सकें। वे अपना विरोध कुछ लिखकर, कोई साझा वक्तव्य देकर, या कोई छोटा-मोटा विरोध प्रदर्शन करके ही कर सकते हैं। और यह हुआ भी है, हो भी रहा है। लेकिन आप यह देखिए कि समाज में जब कोई बड़ा आंदोलन न हो, विपक्षी राजनीतिक दल भी जब कुछ विशेष न कर पा रहे हों और लेखक, कलाकार, बुद्धिजीवी आदि स्वयं को असुरक्षित महसूस कर रहे हों, चारों तरफ एक भय का-सा वातावरण हो, तो क्या साहित्यकारों पर लानत भेजना उचित है?

लाल बहादुर वर्मा : आपकी बात सही है। साहित्यकार अपने-आप में कोई शक्ति नहीं हैं कि कोई बड़ा सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन खड़ा कर दें। लेकिन उनमें संवेदनशीलता तो दिखनी चाहिए। उनकी रचनाएँ पढ़कर ऐसा तो लगना चाहिए कि इनको लिखने वाले मौजूदा यथार्थ को देखकर बेचैन हैं, उनकी नींद खराब हो गयी है, और उनकी बेचैनी उनकी रचना में व्यक्त होकर हमारे दिल पर असर कर रही है। आजादी के आंदोलन के समय का साहित्य देखें, अपना हिंदी साहित्य ही देखें, तो उस समय की रचनाएँ पाठकों और श्रोताओं को प्रभावित करती थीं, उद्वेलित करती थीं, प्रेरित करती थीं। ब्रिटिश सत्ता वर्तमान सत्ता से कम मजबूत नहीं थी। भय और दमन का आतंक उस समय आज से कहीं ज्यादा था। फिर भी उस समय प्रगतिशील लेखक संघ बना, इप्टा (भारतीय जन नाट्य संघ) बना। हिंदी, उर्दू और अन्य भारतीय भाषाओं में जनता को उद्वेलित करने वाली साहित्यिक कृतियाँ रची गयीं। आज ऐसा क्यों नहीं हो रहा है?

संज्ञा उपाध्याय : आप इतिहासकार हैं, आप ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं।

लाल बहादुर वर्मा : मुझे लगता है कि 1947 के बाद लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों का एक बड़ा हिस्सा सत्ता के साथ हो गया। शिक्षण संस्थाओं में अच्छी नौकरियाँ करने लगा। सरकारी या बड़े सेठों के अखबारों और पत्रिकाओं में काम करने लगा। रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा जैसे बड़े संचार माध्यमों में अच्छे पदों पर नियुक्त होकर शासक वर्ग के समर्थन में प्रचार करने लगा। बड़े साहित्यकारों को यह सब करते देख नया लेखक भी उनकी तरह व्यवस्था में फिट होकर सफल होने की सोचने लगा। जनता से और जन आंदोलनों से उसका संपर्क या तो रहा ही नहीं, या बहुत कम हो गया। यही कारण था कि प्रगतिशील लेखक संघ और इप्टा जैसी पुरानी संस्थाएँ लड़खड़ाने लगीं और जो नये लेखक संगठन बने, वे निष्प्रभावी रहे। आज भी लेखक संगठन हैं, नाटक करने वाली संस्थाएँ हैं, लेकिन ये सब क्या कर रहे हैं? इन्हें एक सांस्कृतिक आंदोलन चलाना चाहिए था, जो इन्होंने नहीं चलाया। और शायद इसी का नतीजा है कि वर्तमान परिस्थिति में ये कुछ नहीं कर पा रहे हैं और अलग-थलग पड़ गये हैं। साहित्यकार समाज से इतना कट गया है कि उसके निकटतम पड़ोसी भी नहीं जानते कि वह लेखक है और यदि जानते भी हैं कि लेखक है, तो यह नहीं जानते कि लिखता क्या है।

संज्ञा उपाध्याय : मार्क्सवाद में वर्तमान व्यवस्था के आधे-अधूरे मनुष्य के पूर्ण मनुष्य में रूपांतरित होने की परिकल्पना की गयी है। आप इस परिकल्पना को आदर्श मानते हैं या यथार्थ? आपके विचार से पूर्ण मनुष्यता तक पहुँचने की प्रक्रिया क्या है?

लाल बहादुर वर्मा : मेरे पास इस प्रश्न का उत्तर भी काफी नकारात्मक है। मार्क्सवाद के अध्ययन से और अपने जीवन के अनुभव से मेरी जो दृष्टि विकसित हुई थी, उससे मैं मानता था कि मार्क्सवाद निश्चित रूप से मनुष्य को पूर्ण मनुष्यता की मंजिल तक पहुँचा सकता है, क्योंकि मार्क्स ने ही वैज्ञानिक रूप से 'एलिएनेशन' (पार्थक्य) का पता लगाया और बताया कि शोषण की व्यवस्था में मनुष्यता का क्षरण कैसे होता है और यदि शोषण की व्यवस्था को समाप्त करके समाज को साम्यवादी समाज बनाया जाये, तो मनुष्य उसमें पूर्ण मनुष्य बन सकता है। लेकिन मार्क्सवादी लोगों ने रूस और चीन में जो क्रांतियाँ कीं और उनके बाद जो समाजवादी व्यवस्था बनायी, वह कहीं से भी समाजवादी नहीं थी और उसमें मनुष्यता का विकास नहीं, क्षरण ही हुआ। उस व्यवस्था में भौतिक उपलब्धियाँ तो बहुत हुईं, पर सांस्कृतिक उपलब्धि इतनी भी

नहीं हुई कि मनुष्य पार्थक्य से मुक्त हो पाता। मनुष्यता का क्षरण करने वाला पार्थक्य उस व्यवस्था में भी बना रहा, बल्कि कुछ मायनों में तो पूँजीवादी व्यवस्था के पार्थक्य से भी ज्यादा बढ़ा।

संज्ञा उपाध्याय : अपने देश के संदर्भ में इस प्रश्न पर विचार करें, तो?

लाल बहादुर वर्मा : अपने देश की बात करूँ, तो यहाँ की कम्युनिस्ट पार्टियों में मनुष्य की पूर्णता की परिकल्पना दूर-दूर तक दिखायी नहीं देती। यहाँ तो रूस या चीन जैसा परिवर्तन होने के पहले ही वे कमजोरियाँ दिखायी देने लगीं, जो वहाँ परिवर्तन के बाद आयीं। जहाँ तक मेरा अपना मानना या सोचना है, पूर्ण मनुष्य एक आदर्श है और यह आदर्श दुनिया के सामने मार्क्स या मार्क्सवाद ने नहीं रखा है। यह आदर्श बहुत पहले से दुनिया भर के चिंतन में मौजूद रहा है और उसकी ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करने के प्रयत्न भी धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों के जरिये किये जाते रहे हैं। मार्क्सवाद का नया योगदान इसमें यह रहा कि उससे पहले इस आदर्श तक पहुँचना असंभव लगता था, मार्क्सवाद ने इसे संभव बनाया। उसने बताया कि शोषण की व्यवस्था को बदलकर समता की व्यवस्था कायम करने से मनुष्य की पूर्णता के आदर्श तक पहुँचा जा सकता है। लेकिन अपने यहाँ के कम्युनिस्टों ने इस आदर्श को अपने सामने रखा ही नहीं।

संज्ञा उपाध्याय : उन्होंने शायद यह मान लिया कि हमारी पार्टी सबसे सही पार्टी है, उससे जुड़े होने के कारण हम सबसे सही कम्युनिस्ट हैं और हम ही आदर्श मनुष्य हैं!

लाल बहादुर वर्मा : स्वयं को सही और दूसरों को गलत मानने का ही यह परिणाम हुआ कि भारतीय कम्युनिस्टों में आपसी मतभेद पैदा होते रहे, बढ़ते रहे और कम्युनिस्ट पार्टियों में विभाजन-दर-विभाजन होते रहे। आपस में लड़कर कमजोर हो जाना उन्हें मंजूर था, मिलकर मजबूत बनना उन्हें मंजूर नहीं था। आत्मालोचना करके खुद को ठीक करने का तो सवाल ही नहीं, वे दूसरों के द्वारा की गयी आलाचना भी सुनने को तैयार नहीं थे। मसलन, रमेश उपाध्याय ने 'कम्युनिस्ट नैतिकता' लिखी। किसी ने पढ़ी? उससे कुछ सीखा? रणधीर सिंह ने 'क्राइसिस ऑफ सोशलिज्म' लिखी। किसी ने पढ़ी? उससे कुछ सीखा? नहीं। और तो और, सोवियत संघ के विघटन जैसी बड़ी घटना से भी उन्होंने कुछ नहीं सीखा। उसका विश्लेषण किया जाता, वहाँ हुई गलतियों से सबक लेकर अपनी आलोचना की जाती, कोई नया रास्ता निकालकर उस पर आगे बढ़ा जाता, तो पता चलता कि हाँ, कोई आदर्श है, कोई नैतिकता है। लेकिन हुआ यह कि बस उदास हो गये, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये कि अब क्या करें, और उसी पुराने ढर्रे पर चलते रहे। कहने को वे मार्क्सवादी हैं, साम्यवादी हैं, लेकिन व्यवहार में परिवर्तनवादी भी नहीं, परंपरावादी या रूढ़िवादी हैं। मुझे तो उनसे कोई उम्मीद नहीं है।

संज्ञा उपाध्याय : तो आपको उम्मीद किनसे है?

लाल बहादुर वर्मा : मुझे उम्मीद उन सच्चे और ईमानदार लोगों से है, जो मनुष्य को मनुष्य समझते हैं और अपनी जिंदगी को सब लोगों के साथ बेहतर बनाने के लिए अपने विचार, विश्वास और सिद्धांत पर दृढ़ रहते हैं, चाहे वे गाँधीवादी हों या मार्क्सवादी हों। होना यह चाहिए कि जिसमें जिसका विश्वास हो, वह उस विश्वास को मजबूत करे और उसकी रोशनी में उसका जो कर्तव्य हो, वह करे। और मैं देखता हूँ कि समाज में, देश में, दुनिया में ऐसे लोग हैं और बहुत हैं। मैं यह नहीं मानता कि दुनिया में सब बेईमान हैं या सब इंसान नहीं, हैवान हैं या शैतान हैं। मैं यह मानता हूँ कि मनुष्य बनना, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य बने रहना,

बल्कि उन स्थितियों में बेहतर मनुष्य बनने की कोशिश करना मनुष्य का सहज स्वभाव है। वह अपने इसी सहज स्वभाव के साथ मिल-जुलकर, मानवीय समाज बनाकर, मानवीय सभ्यता और संस्कृति का विकास करते हुए अपना जीवन जीता आया है और अपने साथ-साथ समूची मानवता की उन्नति करता आया है। वह आज भी ऐसा करता है और आगे भी करता रहेगा, यह मेरा विश्वास है। आज हम अमानुषिकता की जो चर्चा कर रहे हैं, वह भी इसी आधार पर कर पा रहे हैं कि जो लोग अमानुषिक हैं, या वर्तमान व्यवस्था द्वारा बना दिये गये हैं, उन्हें भी मनुष्य बनाया जा सकता है।

संज्ञा उपाध्याय : कैसे?

लाल बहादुर वर्मा : मैं दूसरों की नहीं, अपनी बात कहूँगा। मैं अकादमिक और साहित्यिक होते हुए भी एक्टिविस्ट रहा हूँ। जब गोरखपुर में था, तब भी; जब इलाहाबाद में था, तब भी और अब जबकि देहरादून में रहता हूँ, तब भी--हालाँकि अब मैं बूढ़ा और रिटायर हो गया हूँ--मैं एक काम हमेशा करता रहा हूँ : दोस्ती करना। आज की दुनिया में, जबकि दुश्मनियाँ बढ़ायी जा रही हैं, दोस्त बनाना एक तरह का एक्टिविज्म है, एक तरह का विद्रोह है, एक तरह के विपक्ष का निर्माण है। दोस्ती का मतलब कोई पार्टी या संगठन बनाना नहीं है। दोस्ती का मतलब है एक-दूसरे को भला इंसान मानना, एक-दूसरे पर विश्वास और भरोसा करना, एक-दूसरे के सुख-दुख में शामिल होना और धर्म, जाति, पेशे, स्टेटस, विचारधारा, राजनीति, खान-पान, रहन-सहन आदि के तमाम भेद होते हुए भी दोस्ती करना और उसे निभाना। मैं फेसबुक वाली दोस्ती की नहीं, आभासी दुनिया वाली दोस्ती की नहीं, वास्तविक दोस्ती की बात कर रहा हूँ। मैं दोस्तों से बाहर ही नहीं मिलता, उनके घर जाकर भी मिलता हूँ, उन्हें अपने घर बुलाकर भी मिलता हूँ। मतभेद होते हुए भी मैं उनसे बातें और बहसें करता हूँ। इस तरह मैं और मेरे दोस्त कोई लड़ाई नहीं लड़ रहे हैं, लेकिन मुझे उम्मीद है कि अगर कभी सच और झूठ, न्याय और अन्याय, मानुषिकता और अमानुषिकता के सवाल पर कोई लड़ाई हुई, तो मैं और मेरे दोस्त, तमाम मतभेदों के बावजूद सत्य, न्याय और मनुष्यता के पक्ष में खड़े होकर लड़ेंगे। लड़ेंगे और जीतेंगे भी, क्योंकि मुझे यह भी विश्वास है कि मानुषिकता और अमानुषिकता के बीच की लड़ाई में जीत मानुषिकता की होगी, क्योंकि अमानुषिकता अप्राकृतिक है, अस्वाभाविक है और अंततः असहनीय है।

संज्ञा उपाध्याय : बहुत अच्छी बात कही आपने। लेकिन यह बतायें कि दिन पर दिन बढ़ रही अमानुषिकता की समस्या, जो केवल हमारे देश में नहीं, पूरी दुनिया में बढ़ती दिखायी दे रही है, कब तक यों ही बढ़ती रहेगी? क्या इसका कोई समाधान संभव नहीं?

लाल बहादुर वर्मा : समाधान मुश्किल है, किंतु संभव है। लेकिन कोई भी समस्या--चाहे वह महँगाई हो, अत्याचार हो, देशों के बीच लड़ाई हो या अमानुषिकता--तात्कालिक रूप से हल होने वाली नहीं। आज की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी समस्या एक नये प्रकार के समाज में, एक नये प्रकार के इंसान बनने से ही हल होने वाली है। लेकिन नया समाज और नया इंसान बनने की प्रक्रिया हजारों साल लंबी हो सकती है। इसलिए अमानुषीकरण की समस्या कब तक यों ही बढ़ती रहेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन लक्ष्य दूर है, यह देखकर हम उसकी दिशा में चलना बंद नहीं कर देते। हाँ, इस समस्या के समाधान की दिशा में आगे बढ़ते रहने के लिए रास्ते की दो बहुत बड़ी बाधाओं को हटाना सबसे पहली जरूरत है। ये दो बाधाएँ

हैं--तात्कालिकता और संकीर्णता। तात्कालिकता का मतलब यह है कि हम समस्या का समाधान तुरंत चाहते हैं। जैसे, लिंचिंग होने पर कई पढ़े-लिखे लोग भी मूर्खतापूर्ण ढंग से चिल्लाने लगते हैं--हत्यारों को फाँसी दो, फाँसी दो। वे यह नहीं सोचते कि अमानुषिकता जैसी समाज और सभ्यता के क्षेत्र की बहुत बड़ी समस्या को कानून और व्यवस्था के क्षेत्र की छोटी समस्या बना देना उसका समाधान नहीं है, बल्कि उसे और बढ़ाना है। उसका समाधान एक सरकार को हटाकर दूसरी सरकार ले आना भी नहीं है, क्योंकि समाज की व्यवस्था में और लोगों के आचरण में जब तक बुनियादी बदलाव नहीं होता, कोई भी सरकार आ जाये, वह इस समस्या को हल नहीं कर सकती। इसलिए हमारा लक्ष्य होना चाहिए बुनियादी बदलाव, जो एक दूरगामी लक्ष्य है और जिस तक पहुँचने की प्रक्रिया बहुत लंबी है।

संज्ञा उपाध्याय : और दूसरी बाधा, जो आप बता रहे थे, संकीर्णता?

लाल बहादुर वर्मा : उसी पर आ रहा हूँ। बुनियादी बदलाव मार्क्सवादी सिद्धांत को व्यवहार में लाने वाले कम्युनिस्टों का काम है। मार्क्स ने हमें सिखाया था कि बुनियादी बदलाव के दूरगामी लक्ष्य को पाने के लिए विचारधारा, राजनीति, रणनीति और कार्यनीति के अनुसार काम करना पड़ता है और ये चीजें परिस्थिति-सापेक्ष होने के कारण परिवर्तनशील होती हैं। मार्क्सवाद कोई धर्मग्रंथ नहीं है कि उसमें जो लिखा है, वह ब्रह्मवाक्य है और उसको बदला नहीं जा सकता। लेकिन हमारे मार्क्सवादी और उनके राजनीतिक दल मानो यह मानकर चलते हैं कि उनकी और उनके दल की समझ ही सही है, दूसरे मार्क्सवादियों और उनके दलों की समझ गलत है, इसलिए उनके साथ मिलकर काम नहीं किया जा सकता। यही संकीर्णतावाद है। अगर यह संकीर्णतावाद न होता, तो क्या हमारे यहाँ इतनी कम्युनिस्ट पार्टियाँ होतीं और उनमें इतने सारे मतभेद होते? आज भी? शत्रुओं के इतने ताकतवर हो जाने के बाद भी? आम लोग कहते हैं कि वर्तमान व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं है। कम्युनिस्ट पार्टियाँ भी शायद यही मान बैठी हैं। अन्यथा क्या वे सब मिलकर कोई विकल्प खोज या बना नहीं सकती थीं? वास्तविकता यह है कि विकल्प खोजा ही नहीं गया। तात्कालिकता और संकीर्णता के चलते विकल्प खोजना संभव भी नहीं है। मगर आज की वैश्विक पूँजीवादी व्यवस्था का विकल्प खोजना और बनाना निहायत जरूरी है, क्योंकि ऐसा न हुआ, तो यह दुनिया बचेगी नहीं। मैं दूरगामी लक्ष्य और उस तक पहुँचने के मार्ग की बाधाओं की बात इसलिए कर रहा हूँ कि आज मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। आज का पूँजीवाद प्रकृति और पर्यावरण का जो नाश कर रहा है, नाभिकीय हथियारों से लड़े जाने वाले अंतिम विश्वयुद्ध की ओर जो दुनिया को धकेल रहा है, उससे मनुष्य और पृथ्वी, सबके सर्वनाश की आशंका है। इस आशंका को देखते हुए आज दुनिया के सभी मनुष्यों को अमानुषिकता के खिलाफ और मानुषिकता के लिए एकजुट होकर लड़ना चाहिए।

मोबाइल : 09454069645